वैदिक वाङ्मयका शास्त्रीय स्वरूप

(डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र)

संस्कृत साहित्यकी शब्द-रचनाकी दृष्टिसे 'वेद' शब्दका अर्थ ज्ञान होता है, परंतु इसका प्रयोग साधारणतया ज्ञानके अर्थमें नहीं किया जाता। हमारे महर्षियोंने अपनी तपस्याके द्वारा जिस 'शाश्वत ज्योति' का परम्परागत शब्द-रूपसे साक्षात्कार किया, वही शब्द-राशि 'वेद' है। वेद अनादि हैं और परमात्माके स्वरूप हैं। महर्षियोंद्वारा प्रत्यक्ष दृष्ट होनेके कारण इनमें कहीं भी असत्य या अविश्वासके लिये स्थान नहीं है। ये नित्य हैं और मूलमें पुरुषजातिसे असम्बद्ध होनेके कारण अपौरुषेय कहे जाते हैं।

वेद अनादि-अपौरुषेय और नित्य हैं तथा उनकी प्रामाणिकता स्वत:सिद्ध है, इस प्रकारका मत आस्तिक सिद्धान्तवाले सभी पौराणिकों एवं सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्तके दार्शनिकोंका है। न्याय और वैशेषिकके दार्शनिकोंने वेदको अपौरुषेय नहीं माना है, पर वे भी इन्हें परमेश्वर (पुरुषोत्तम)-द्वारा निर्मित, परंतु पूर्वानुरूपीका ही मानते हैं। इन दोनों शाखाओंके दार्शनिकोंने वेदको परम प्रमाण माना है और आनुपूर्वी (शब्दोच्चारणक्रम)-को सृष्टिके आरम्भसे लेकर अबतक अविच्छिन्नरूपसे प्रवृत्त माना है।

जो वेदको प्रमाण नहीं मानते, वे आस्तिक नहीं कहे जाते। अत: सभी आस्तिक मतवाले वेदको प्रमाण माननेमें एकमत हैं, केवल न्याय और वैशेषिक दार्शनिकोंकी अपौरुषेय माननेकी शैली भिन्न है। नास्तिक दार्शनिकोंने वेदोंको भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंद्वारा रचा हुआ ग्रन्थ माना है। चार्वाक मतवालोंने तो वेदको निष्क्रिय लोगोंकी जीविकाका साधनतक कह डाला है। अत: नास्तिक दर्शनवाले वेदको न तो अनादि, न अपौरुषेय और न नित्य ही मानते हैं तथा न इनकी प्रामाणिकतामें ही विश्वास करते हैं। इसीलिये वे नास्तिक कहलाते हैं। आस्तिक दर्शनशास्त्रोंने इस मतका युक्ति, तर्क एवं प्रमाणसे पूरा खण्डन किया है।

वेद चार हैं

वर्तमान कालमें वेद चार माने जाते हैं, उनके नाम हैं—(१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) सामवेद और (४) अथर्ववेद।

द्वापरयुगकी समाप्तिके पूर्व वेदोंके उक्त चार विभाग अलग-अलग नहीं थे। उस समय तो 'ऋक्', 'यजु:' और 'साम'—इन तीन शब्द-शैलियोंकी संग्रहात्मक एक विशिष्ट अध्ययनीय शब्द-राशि ही वेद कहलाती थी। यहाँ यह कहना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि परमपिता परमेश्वरने प्रत्येक कल्पके आरम्भमें सर्वप्रथम ब्रह्माजी (परमेष्ठी प्रजापति)-के हृदयमें समस्त वेदोंका प्रादुर्भाव कराया था, जो उनके चारों मुखोंमें सर्वदा विद्यमान रहते हैं। ब्रह्माजीकी ऋषिसंतानोंने आगे चलकर तपस्याद्वारा इसी शब्द-राशिका साक्षात्कार किया और पठन-पाठनकी प्रणालीसे इनका संरक्षण किया।

त्रयी

विश्वमें शब्द-प्रयोगकी तीन ही शैलियाँ होती हैं; जो पद्य (कविता), गद्य और गानरूपसे जन-साधारणमें प्रसिद्ध हैं। पद्यमें अक्षर-संख्या तथा पाद एवं विरामका निश्चित नियम रहता है। अत: निश्चित अक्षर-संख्या और पाद एवं विरामवाले वेद-मन्त्रोंकी संज्ञा 'ऋक्' है। जिन मन्त्रोंमें छन्दके नियमानुसार अक्षर-संख्या और पाद एवं विराम ऋषिदृष्ट नहीं हैं, वे गद्यात्मक मन्त्र 'यजु:' कहलाते हैं और जितने मन्त्र गानात्मक हैं, वे मन्त्र 'साम' कहलाते हैं। इन तीन प्रकारकी शब्द-प्रकाशन-शैलियोंके आधारपर ही शास्त्र एवं लोकमें वेदके लिये 'त्रयी' शब्दका भी व्यवहार किया जाता है। 'त्रयी' शब्दसे ऐसा नहीं समझना चाहिये कि वेदोंकी संख्या ही तीन है, क्योंकि 'त्रयी' शब्दका व्यवहार शब्द-प्रयोगकी शैलीके आधारपर है।

श्रुति—आम्नाय

वेदके पठन-पाठनके क्रममें गुरुमुखसे श्रवण कर स्वयं अभ्यास करनेकी प्रक्रिया अबतक है। आज भी गुरुमुखसे श्रवण किये बिना केवल पुस्तकके आधारपर ही मन्त्राभ्यास करना निन्दनीय एवं निष्फल माना जाता है। इस प्रकार वेदके संरक्षण एवं सफलताकी दृष्टिसे गुरुमुखसे श्रवण करने एवं उसे याद करनेका अत्यन्त महत्त्व है। इसी कारण वेदको 'श्रुति' भी कहते हैं। वेद परिश्रमपूर्वक अभ्यासद्वारा संरक्षणीय है। इस कारण इसका नाम 'आम्नाय' भी है। त्रयी, श्रुति और आम्नाय—ये तीनों शब्द आस्तिक ग्रन्थोंमें वेदके लिये व्यवहृत किये जाते हैं।

चार वेद

उस समय (द्वापरयुगकी समाप्तिके समय)-में भी वेदका पढ़ाना और अभ्यास करना सरल कार्य नहीं था। कलियुगमें मनुष्योंकी शक्तिहीनता और कम आयु होनेकी

बातको ध्यानमें रखकर वेदपुरुष भगवान् नारायणके अवतार श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी महाराजने यज्ञानुष्ठानके उपयोगको दृष्टिगत रखकर उस एक वेदके चार विभाग कर दिये और इन चारों विभागोंकी शिक्षा चार शिष्योंको दी। ये ही चार विभाग आजकल ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदके नामसे प्रसिद्ध हैं। पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु नामक—इन चार शिष्योंने अपने-अपने अधीत वेदोंके संरक्षण एवं प्रसारके लिये शाकल आदि अपने भिन्न-भिन्न शिष्योंको पढ़ाया। उन शिष्योंके मनोयोग एवं प्रचारके कारण वे शाखाएँ उन्हींके नामसे आजतक प्रसिद्ध हो रही हैं। यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि शाखाके नामसे सम्बन्धित कोई भी मुनि मन्त्रद्रष्टा ऋषि नहीं है और न वह शाखा उसकी रचना है। शाखाके नामसे सम्बन्धित व्यक्तिका उस वेदशाखाकी रचनासे सम्बन्ध नहीं है, अपितु प्रचार एवं संरक्षणके कारण सम्बन्ध है।

कर्मकाण्डमें भिन्न वर्गीकरण

वेदोंका प्रधान लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान देना ही है, जिससे प्राणिमात्र इस असार संसारके बन्धनोंके मूलभूत कारणोंको समझकर इससे मुक्ति पा सके। अतः वेदमें कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड—इन दोनों विषयोंका सर्वाङ्गीण निरूपण किया गया है। वेदोंका प्रारम्भिक भाग कर्मकाण्ड है और वह ज्ञानकाण्डवाले भागसे बहुत अधिक है। कर्मकाण्डमें यज्ञानुष्ठान-सम्बन्धी विधि-निषेध आदिका सर्वाङ्गीण विवेचन है। इस भागका प्रधान उपयोग यज्ञानुष्ठानमें होता है। जिन अधिकारी वैदिक विद्वानोंको यज्ञ करानेका यजमानद्वारा अधिकार प्राप्त होता है, उनको 'ऋत्विक्' कहते हैं। श्रौतयज्ञमें इन ऋत्विजोंके चार गण हैं। समस्त ऋत्विक् चार वर्गोंमें बँटकर अपना-अपना कार्य करते हुए यज्ञको सर्वाङ्गीण बनाते हैं। गणोंके नाम हैं—(१) होतृगण, (२) अध्वर्युगण, (३) उद्गातृगण और (४) ब्रह्मगण।

उपर्युक्त चारों गणों या वर्गोंके लिये उपयोगी मन्त्रोंके संग्रहके अनुसार वेद चार हुए हैं। उनका विभाजन इस प्रकार किया गया है—

ऋग्वेद—इसमें होतृवर्गके लिये उपयोगी मन्त्रोंका संकलन है। इसका नाम ऋग्वेद इसलिये पड़ा है कि इसमें 'ऋक्' संज्ञक (पद्यबद्ध) मन्त्रोंकी अधिकता है। इसमें होतृवर्गके उपयोगी गद्यात्मक (यजुः) स्वरूपके भी कुछ मन्त्र हैं। इसकी मन्त्र-संख्या अन्य वेदोंकी अपेक्षा अधिक है। इसके कई मन्त्र अन्य वेदोंमें भी मिलते हैं। सामवेदमें तो ऋग्वेदके मन्त्र ही अधिक हैं। स्वतन्त्र मन्त्र कम हैं।

यजुर्वेद—इसमें यज्ञानुष्ठान-सम्बन्धी अध्वर्युवर्गके उपयोगी मन्त्रोंका संकलन है। इसका नाम यजुर्वेद इसलिये पड़ा है कि इसमें 'गद्यात्मक' मन्त्रोंकी अधिकता है। इसमें कुछ पद्यबद्ध, मन्त्र भी हैं जो अध्वर्युवर्गके उपयोगी हैं। इसके कुछ मन्त्र अथर्ववेदमें भी पाये जाते हैं। यजुर्वेदके दो विभाग हैं—(१) शुक्लयजुर्वेद और (२) कृष्णयजुर्वेद।

सामवेद—इसमें यज्ञानुष्ठानके उद्गातृवर्गके उपयोगी मन्त्रोंका संकलन है। इसका नाम सामवेद इसलिये पड़ा है कि इसमें गायन-पद्धतिके निश्चित मन्त्र ही हैं। इसके अधिकांश मन्त्र ऋग्वेदमें उपलब्ध होते हैं, कुछ मन्त्र स्वतन्त्र भी हैं।

अथर्ववेद—इसमें यज्ञानुष्ठानके ब्रह्मवर्गके उपयोगी मन्त्रोंका संकलन है। इस ब्रह्मवर्गका कार्य है यज्ञकी देख-रेख करना, समय-समयपर नियमानुसार निर्देश देना, यज्ञमें ऋत्विजों एवं यजमानके द्वारा कोई भूल हो जाय या कमी रह जाय तो उसका सुधार या प्रायश्चित्त करना। अथर्वका अर्थ है कमियोंको हटाकर ठीक करना या कमी-रहित बनाना। अतः इसमें यज्ञ-सम्बन्धी एवं व्यक्ति-सम्बन्धी सुधार या कमी-पूर्ति करनेवाले भी मन्त्र हैं। इसमें पद्यात्मक मन्त्रोंके साथ कुछ गद्यात्मक मन्त्र भी उपलब्ध हैं। इस वेदका नामकरण अन्य वेदोंकी भाँति शब्द-शैलीके आधारपर नहीं है, अपितु इसके प्रतिपाद्य विषयके अनुसार है। इस वैदिक शब्दराशिका प्रचार एवं प्रयोग मुख्यतः अथर्व नामके महर्षिद्वारा किया गया। इसलिये भी इसका नाम अथर्ववेद है।

कुछ मन्त्र सभी वेदोंमें या एक-दो वेदोंमें समान-रूपसे मिलते हैं, जिसका कारण यह है कि चारों वेदोंका विभाजन यज्ञानुष्ठानके ऋत्विक् जनोंके उपयोगी होनेके आधारपर किया गया है। अतः विभिन्न यज्ञावसरोंपर विभिन्न वर्गोंके ऋत्विजोंके लिये उपयोगी मन्त्रोंका उस वेदमें आ जाना स्वाभाविक है, भले ही वह मन्त्र दूसरे ऋत्विक्के लिये भी अन्य अवसरपर उपयोगी होनेके कारण अन्यत्र भी मिलता हो।

वेदोंका विभाजन और शाखा-विस्तार

आधुनिक विचारधाराके अनुसार चारों वेदोंकी शब्द-राशिके विस्तारमें तीन दृष्टियाँ पायी जाती हैं—(१) याज्ञिक दृष्टि, (२) प्रायोगिक दृष्टि और (३) साहित्यिक दृष्टि।

याज्ञिक दृष्टि—इसके अनुसार वेदोक्त यज्ञोंका अनुष्ठान

ही वेदके शब्दोंका मुख्य उपयोग माना गया है। सृष्टिके आरम्भसे ही यज्ञ करनेमें साधारणतया मन्त्रोच्चारणकी शैली, मन्त्राक्षर एवं कर्म-विधिमें विविधता रही है। इस विविधताके कारण ही वेदोंकी शाखाका विस्तार हुआ है। प्रत्येक वेदकी अनेक शाखाएँ बतायी गयी हैं। यथा—ऋग्वेदकी २१ शाखा, यजुर्वेदकी १०१ शाखा, सामवेदकी १,००० शाखा और अथर्ववेदकी ९ शाखा—इस प्रकार कुल १,१३१ शाखाएँ हैं। इस संख्याका उल्लेख महर्षि पतञ्जलिने अपने महाभाष्यमें भी किया है। अन्य वेदोंकी अपेक्षा ऋग्वेदमें मन्त्र-संख्या अधिक है, फिर भी इसका शाखा-विस्तार यजुर्वेद और सामवेदकी अपेक्षा कम है। इसका कारण यह है कि ऋग्वेदमें देवताओंके स्तुतिरूप मन्त्रोंका भण्डार है। स्तुति-वाक्योंकी अपेक्षा कर्मप्रयोगकी शैलीमें भिन्नता होनी स्वाभाविक है। अत: ऋग्वेदकी अपेक्षा यजुर्वेदकी शाखाएँ अधिक हैं। गायन-शैलीकी शाखाओंका सर्वाधिक होना आश्चर्यजनक नहीं है। अत: सामवेदकी १,००० शाखाएँ बतायी गयी हैं। फलत: कोई भी वेद शाखा-विस्तारके कारण एक-दूसरेसे उपयोगिता, श्रद्धा एवं महत्त्वमें कम-ज्यादा नहीं है। चारोंका महत्त्व समान है।

उपर्युक्त १,१३१ शाखाओंमेंसे वर्तमानमें केवल १२ शाखाएँ ही मूल ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं। वे हैं—

१-ऋग्वेदकी २१ शाखाओंमेंसे केवल २ शाखाओंके ही ग्रन्थ प्राप्त हैं—(१) शाकल-शाखा और (२) शांखायन-शाखा।

२-यजुर्वेदमें कृष्णयजुर्वेदकी ८६ शाखाओंमेंसे केवल ४ शाखाओंके ग्रन्थ ही प्राप्त हैं—(१) तैत्तिरीय-शाखा, (२) मैत्रायणीय-शाखा, (३) कठ-शाखा और (४) कपिष्ठल-शाखा।

शुक्लयजुर्वेदकी १५ शाखाओंमेंसे केवल २ शाखाओंके ग्रन्थ ही प्राप्त हैं—(१) माध्यन्दिनीय-शाखा और (२) काण्व-शाखा।

३-सामवेदकी १,००० शाखाओंमेंसे केवल २ शाखाओंके ही ग्रन्थ प्राप्त हैं—(१) कौथुम-शाखा और (२) जैमिनीय-शाखा।

४-अथर्ववेदकी ९ शाखाओंमेंसे केवल २ शाखाओंके ही ग्रन्थ प्राप्त हैं— (१) शौनक-शाखा और (२) पैप्पलाद-शाखा।

उपर्युक्त १२ शाखाओंमेंसे केवल ६ ह्यशाखाओंकी अध्ययन-शैली प्राप्त है, जो नीचे दी जा रही है—

ऋग्वेदमें केवल शाकल-शाखा, कृष्णयजुर्वेदमें केवल तैत्तिरीय-शाखा और शुक्लयजुर्वेदमें केवल माध्यन्दिनीय-शाखा तथा काण्व-शाखा, सामवेदमें केवल कौथुम-शाखा, अथर्ववेदमें केवल शौनक-शाखा। यह कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा कि अन्य शाखाओंके कुछ और भी ग्रन्थ उपलब्ध हैं, किंतु उनसे उस शाखाका पूरा परिचय नहीं मिल सकता एवं बहुत-सी शाखाओंके तो नाम भी उपलब्ध नहीं हैं। कृष्णयजुर्वेदकी मैत्रायणी-शाखा महाराष्ट्रमें तथा सामवेदकी जैमिनीय-शाखा केरलके कुछ व्यक्तियोंके ही उच्चारणमें सीमित हैं।

प्रायोगिक दृष्टि—इसके अनुसार प्रत्येक शाखाके दो भाग बताये गये हैं। एक मन्त्र-भाग और दूसरा ब्राह्मण-भाग।

मन्त्र-भाग—मन्त्र-भाग उस शब्दराशिको कहते हैं, जो यज्ञमें साक्षात्-रूपसे प्रयोगमें आती है।

ब्राह्मण-भाग—ब्राह्मण शब्दसे उस शब्दराशिका संकेत है, जिसमें विधि (आज्ञाबोधक शब्द), कथा, आख्यायिका एवं स्तुतिद्वारा यज्ञ करानेकी प्रवृत्ति उत्पन्न कराना, यज्ञानुष्ठान करनेकी पद्धति बताना, उसकी उपपत्ति और विवेचनके साथ उसके रहस्यका निरूपण करना है। इस प्रायोगिक दृष्टिके दो विभाजनोंमें साहित्यिक दृष्टिके चार विभाजनोंका समावेश हो जाता है।

साहित्यिक दृष्टि—इसके अनुसार प्रत्येक शाखाकी वैदिक शब्द-राशिका वर्गीकरण—(१) संहिता, (२) ब्राह्मण, (३) आरण्यक और (४) उपनिषद्—इन चारों भागोंमें है।

संहिता—वेदका जो भाग प्रतिदिन विशेषत: अध्ययनीय है, उसे 'संहिता' कहते हैं। इस शब्द राशिका उपयोग श्रौत एवं स्मार्त दोनों प्रकारके यज्ञानुष्ठानोंमें होता है। प्रत्येक वेदकी अलग-अलग शाखाकी एक-एक संहिता है। वेदोंके अनुसार उनको—(१) ऋग्वेद-संहिता, (२) यजुर्वेद-संहिता, (३) सामवेद-संहिता और (४) अथर्ववेद-संहिता कहा जाता है। इन संहिताओंके पाठमें उनके अक्षर, वर्ण, स्वर आदिका किंचित् मात्र भी उलट-पुलट न होने पाये, इसलिये प्राचीन अध्ययन-अध्यापनके सम्प्रदायमें (१) संहिता-पाठ, (२) पद-पाठ, (३) क्रम-पाठ—ये तीन प्रकृति पाठ और (१) जटा, (२) माला, (३) शिखा, (४) रेखा, (५) ध्वज, (६) दण्ड, (७) रथ तथा (८) घन—ये आठ विकृति पाठ प्रचलित हैं।

ब्राह्मण—वह वेद-भाग जिसमें विशेषतया यज्ञानुष्ठानकी पद्धतिके साथ-ही-साथ तदुपयोगी प्रवृत्तिका उद्बोधन कराना, उसको दृढ़ करना तथा उसके द्वारा फल-प्राप्ति आदिका निरूपण विधि एवं अर्थवादके द्वारा किया गया है, 'ब्राह्मण' कहा जाता है।

आरण्यक—वह वेद-भाग जिसमें यज्ञानुष्ठान-पद्धति, याज्ञिक मन्त्र, पदार्थ एवं फल आदिमें आध्यात्मिकताका संकेत दिया गया है, 'आरण्यक' कहलाता है। यह भाग मनुष्यको आध्यात्मिक बोधकी ओर झुकाकर सांसारिक बन्धनोंसे ऊपर उठाता है। अतः इसका विशेष अध्ययन भी संसारके त्यागकी भावनाके कारण वानप्रस्थाश्रमके लिये अरण्य (जंगल)-में किया जाता है। इसीलिये इसका नाम 'आरण्यक' प्रसिद्ध हुआ है।

उपनिषद्—वह वेद-भाग जिसमें विशुद्ध रीतिसे आध्यात्मिक चिन्तनको ही प्रधानता दी गयी है और फल-सम्बन्धी फलानुबन्धी कर्मोंके दृढानुरागको शिथिल करना सुझाया गया है, 'उपनिषद्' कहलाता है। वेदका यह भाग उसकी सभी शाखाओंमें है, परंतु यह बात स्पष्ट-रूपसे समझ लेनी चाहिये कि वर्तमानमें उपनिषद् संज्ञाके नामसे जितने ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमेंसे कुछ उपनिषदों (ईशावास्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, छान्दोग्य आदि)-को छोड़कर बाकीके सभी उपनिषद् उसी रूपमें किसी-न-किसी शाखाके उपनिषद्-भागमें उपलब्ध हों, ऐसी बात नहीं है। शाखागत उपनिषदोंमेंसे कुछ अंशको सामयिक, सामाजिक या वैयक्तिक आवश्यकताके आधारपर उपनिषद् संज्ञा दे दी गयी है। इसीलिये इनकी संख्या एवं उपलब्धियोंमें विविधता मिलती है। वेदोंमें जो उपनिषद्-भाग हैं, वे अपनी शाखाओंमें सर्वथा अक्षुण्ण हैं। उनको तथा उन्हीं शाखाओंके नामसे जो उपनिषद्-संज्ञाके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, दोनोंको एक नहीं समझना चाहिये। उपलब्ध उपनिषद्-ग्रन्थोंकी संख्यामेंसे ईशादि १० उपनिषद् तो सर्वमान्य हैं। इनके अतिरिक्त ५ और उपनिषद् (श्वेताश्वतरादि), जिनपर आचार्योंकी टीकाएँ तथा प्रमाण-उद्धरण आदि मिलते हैं, सर्वसम्मत कहे जाते हैं। इन १५ के अतिरिक्त जो उपनिषद् उपलब्ध हैं, उनकी शब्दगत ओजस्विता तथा प्रतिपादनशैली आदिकी विभिन्नता होनेपर भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि इनका प्रतिपाद्य ब्रह्म या आत्मतत्त्व निश्चयपूर्वक अपौरुषेय, नित्य, स्वतःप्रमाण वेद-शब्द-राशिसे सम्बद्ध है।

ऋषि, छन्द और देवता

वेदके प्रत्येक मन्त्रमें किसी-न-किसी ऋषि, छन्द एवं देवताका उल्लेख होना आवश्यक है। कहीं-कहीं एक ही मन्त्रमें एकसे अधिक ऋषि, छन्द और देवताके नाम मिलते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि एक ही मन्त्रमें एकसे अधिक ऋषि, छन्द और देवता क्यों हैं, यह स्पष्ट कर दिया जाय। इसका विवेचन निम्न पंक्तियोंमें किया गया है—

ऋषि—यह वह व्यक्ति है, जिसने मन्त्रके स्वरूपको यथार्थ रूपमें समझा है। 'यथार्थ'—ज्ञान प्रायः चार प्रकारसे होता है (१) परम्पराके मूल पुरुष होनेसे, (२) उस तत्त्वके साक्षात् दर्शनसे, (३) श्रद्धापूर्वक प्रयोग तथा साक्षात्कारसे और (४) इच्छित (अभिलषित)-पूर्ण सफलताके साक्षात्कारसे। अतएव इन चार कारणोंसे मन्त्र-सम्बन्धित ऋषियोंका निर्देश ग्रन्थोंमें मिलता है। जैसे—

१—कल्पके आदिमें सर्वप्रथम इस अनादि वैदिक शब्द-राशिका प्रथम उपदेश ब्रह्माजीके हृदयमें हुआ और ब्रह्माजीसे परम्परागत अध्ययन-अध्यापन होता रहा, जिसका निर्देश '**वंश-ब्राह्मण**' आदि ग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है। अतः समस्त वेदकी परम्पराके मूल पुरुष ब्रह्मा (ऋषि) हैं। इनका स्मरण परमेष्ठी प्रजापति ऋषिके रूपमें किया जाता है।

२—इसी परमेष्ठी प्रजापतिकी परम्पराकी वैदिक शब्द-राशिके किसी अंशके शब्द-तत्त्वकी जिस ऋषिने अपनी तपश्चर्याके द्वारा किसी विशेष अवसरपर प्रत्यक्ष दर्शन किया, वह भी उस मन्त्रका ऋषि कहलाया। उस ऋषिका यह ऋषित्व शब्दतत्त्वके साक्षात्कारका कारण माना गया है। इस प्रकार एक ही मन्त्रका शब्दतत्त्व-साक्षात्कार अनेक ऋषियोंको भिन्न-भिन्न रूपसे या सामूहिक रूपसे हुआ था। अतः वे सभी उस मन्त्रके ऋषि माने गये हैं।

३—कल्प-ग्रन्थोंके निर्देशोंमें ऐसे व्यक्तियोंको भी ऋषि कहा गया है, जिन्होंने उस मन्त्र या कर्मका प्रयोग तथा साक्षात्कार अति श्रद्धापूर्वक किया है।

४—वैदिक ग्रन्थों विशेषतया पुराण-ग्रन्थोंके मननसे यह भी पता लगता है कि जिन व्यक्तियोंने किसी मन्त्रका एक विशेष प्रकारके प्रयोग तथा साक्षात्कारसे सफलता प्राप्त की है, वे भी उस मन्त्रके ऋषि माने गये हैं।

उक्त निर्देशोंको ध्यानमें रखनेके साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि एक ही मन्त्रको उक्त चारों प्रकारसे या एक ही प्रकारसे देखनेवाले भिन्न-भिन्न व्यक्ति ऋषि हुए हैं। फलतः एक मन्त्रके अनेक ऋषि होनेमें

परस्पर कोई विरोध नहीं है, क्योंकि मन्त्र ऋषियोंकी रचना या अनुभूतिसे सम्बन्ध नहीं रखता; अपितु ऋषि ही उस मन्त्रसे बहिरङ्ग रूपसे सम्बद्ध व्यक्ति है।

छन्द—मन्त्रसे सम्बन्धित (मन्त्रके स्वरूपमें अनुस्यूत) अक्षर, पाद, विरामकी विशेषताके आधारपर दी गयी जो संज्ञा है, वही छन्द है। एक ही पदार्थकी संज्ञा विभिन्न सिद्धान्त या व्यक्तिके विश्लेषणके भावसे नाना प्रकारकी हो सकती है। अतः एक ही मन्त्रके भिन्न नामके छन्द शास्त्रोंमें पाये जाते हैं। किसी भी संज्ञाका नियमन उसके तत्त्वज्ञ आप्त व्यक्तिके द्वारा ही होता है। अतः कात्यायन, शौनक, पिंगल आदि छन्दःशास्त्रके आचार्योंकी एवं सर्वानुक्रमणीकारोंकी उक्तियाँ ही इस सम्बन्धमें मान्य होती हैं। इसलिये एक मन्त्रमें भिन्न नामोंके छन्दोंके मिलनेसे भ्रम नहीं होना चाहिये।

देवता—मन्त्रोंके अक्षर किसी पदार्थ या व्यक्तिके सम्बन्धमें कुछ कहते हैं। यह कथन जिस व्यक्ति या पदार्थके निमित्त होता है, वही उस मन्त्रका देवता होता है, परंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि कौन मन्त्र, किस व्यक्ति या पदार्थके लिये कब और कैसे प्रयोग किया जाय, इसका निर्णय वेदका ब्राह्मण-भाग या तत्त्वज्ञ ऋषियोंके शास्त्र-वचन ही करते हैं। एक ही मन्त्रका प्रयोग कई यज्ञिय अवसरों तथा कई कामनाओंके लिये मिलता है। ऐसी स्थितिमें उस एक ही मन्त्रके अनेक देवता बताये जाते हैं। अतः उन निर्देशोंके आधारपर ही कोई पदार्थ या व्यक्ति 'देवता' कहा जाता है। मन्त्रके द्वारा जो प्रार्थना की गयी है, उसकी पूर्ति करनेकी क्षमता उस देवतामें रहती है। लौकिक व्यक्ति या पदार्थ ही जहाँ देवता हैं, वहाँ वस्तुतः वह दृश्य जड पदार्थ या अक्षम व्यक्ति देवता नहीं है, अपितु उसमें अन्तर्हित एक प्रभु-शक्तिसम्पन्न देवता-तत्त्व है, जिससे हम प्रार्थना करते हैं। यही बात 'अभिमानीव्यपदेश' शब्दसे शास्त्रोंमें स्पष्ट की गयी है। लौकिक पदार्थ या व्यक्तिका अधिष्ठाता देवता-तत्त्व मन्त्रात्मक शब्द-तत्त्वसे अभिन्न है, यह मीमांसा-दर्शनका विचार है। वेदान्तशास्त्रमें मन्त्रसे प्रतिपादित देवता-तत्त्वको शरीरधारी चेतन और अतीन्द्रिय कहा गया है। पुराणोंमें कुछ देवताओंके स्थान, चरित्र, इतिहास आदिका वर्णन करके भारतीय संस्कृतिके इस देवतातत्त्वके प्रभुत्वको हृदयङ्गम कराया गया है। निष्कर्ष यही है कि इच्छाकी पूर्ति कर सकनेवाले अतीन्द्रिय मन्त्रसे प्रतिपादित तत्त्वको देवता कहते हैं और उस देवताका संकेत शास्त्र-वचनोंसे ही मिलता है। अतः वचनोंके अनुसार अवसर-भेदसे एक मन्त्रके विभिन्न देवता हो सकते हैं।

वेदके अङ्ग, उपाङ्ग एवं उपवेद

वेदोंके सर्वाङ्गीण अनुशीलनके लिये शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष—इन ६ अङ्गोंके ग्रन्थ हैं। प्रतिपदसूत्र, अनुपद, छन्दोभाषा (प्रतिशाख्य), धर्मशास्त्र, न्याय तथा वैशेषिक—ये ६ उपाङ्ग ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा स्थापत्यवेद—ये क्रमशः चारों वेदोंके उपवेद कात्यायनने बतलाये हैं।

वेदोंकी जानकारीके लिये विशेष उपयोगी ग्रन्थ

वैदिक शब्दोंके अर्थ एवं उनके प्रयोगकी पूरी जानकारीके लिये वेदाङ्ग आदि शास्त्रोंकी व्यवस्था मानी गयी है। उसमें वैदिक स्वर और शब्दोंकी व्यवस्थाके लिये शिक्षा तथा व्याकरण दोनों अङ्गोंके ग्रन्थ वेदके विशिष्ट शब्दार्थके उपयोगके लिये अलग-अलग उपाङ्ग ग्रन्थ 'प्रातिशाख्य' हैं, जिन्हें वैदिक व्याकरण भी कहते हैं। प्रयोग-पद्धतिकी सुव्यवस्थाके लिये कल्पशास्त्र माना जाता है। इसके चार भेद हैं—(१) श्रौतसूत्र, (२) गृह्यसूत्र, (३) धर्मसूत्र और (४) शुल्बसूत्र। इनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

श्रौतसूत्र—इसमें श्रौत-अग्नि (आहवनीय-गार्हपत्य एवं दक्षिणाग्नि)-में होनेवाले यज्ञ-सम्बन्धी विषयोंका स्पष्ट निरूपण किया गया है।

गृह्यसूत्र—इसमें गृह्य (औपासन)-अग्निमें होनेवाले कर्मों एवं उपनयन, विवाह आदि संस्कारोंका निरूपण किया गया है।

धर्मसूत्र—इसमें वर्ण तथा आश्रम-सम्बन्धी धर्म, आचार, व्यवहार आदिका निरूपण है।

शुल्बसूत्र—इसमें यज्ञ-वेदी आदिके निर्माणकी ज्यामितीय प्रक्रिया तथा अन्य तत्सम्बद्ध निरूपण है।

उपर्युक्त प्रकारसे प्रत्येक शाखाके लिये अलग-अलग व्याकरण और कल्पसूत्र हैं, जिनसे उस शाखाका पूरा ज्ञान हो जाता है और कर्मानुष्ठानमें सुविधा होती है।

इस बातको भी ध्यानमें रखना चाहिये कि यथार्थमें ज्ञानस्वरूप होते हुए भी वेद; कोई वेदान्त-सूत्रकी तरह केवल दार्शनिक ग्रन्थ नहीं हैं, जहाँ केवल आध्यात्मिक चिन्तनका ही समावेश हो। ज्ञान-भण्डारमें लौकिक और अलौकिक सभी विषयोंका समावेश रहता है और साक्षात् या परम्परासे ये सभी विषय परम तत्त्वकी प्राप्तिमें सहायक

होते हैं। यद्यपि किसी दार्शनिक विषयका साङ्गोपाङ्ग विचार वेदमें किसी एक स्थानपर नहीं मिलता, किंतु छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े तत्त्वोंके स्वरूपका साक्षात् दर्शन तो ऋषियोंको हुआ था और वे सब अनुभव वेदमें व्यक्त-रूपसे किसी-न-किसी स्थानपर वर्णित हैं। उनमें लौकिक और अलौकिक सभी बातें हैं। स्थूलतम तथा सूक्ष्मतम रूपसे भिन्न-भिन्न तत्त्वोंका परिचय वेदके अध्ययनसे प्राप्त होता है। अतः वेदके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि वेदका एक ही प्रतिपाद्य विषय है या एक ही दर्शन है अथवा एक ही मन्तव्य है। यह तो साक्षात्-प्राप्त ज्ञानके स्वरूपोंका शब्द-भण्डार है। इसी शब्दराशिके तत्त्वोंको निकाल कर आचार्योंने अपनी-अपनी अनुभूति, दृष्टि एवं गुरु-परम्पराके आधारपर विभिन्न दर्शनों तथा दार्शनिक प्रस्थानों (मौलिक दृष्टिसे सुविचारित मतों)-का संचयन किया है। इस कारण भारतीय दृष्टिसे वेद विश्वका संविधान है।

वेद कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)